शिक्षा, समानता और भारत की संप्रभुता

प्रो. अनिल सद्‌गोपाल

शिक्षा के सार्वजनीनकरण में क्या बाधाएं हैं ? शिक्षा व्यवस्था को कौनसी ताकतें नियंत्रित कर रही हैं ? उदारीकरण एवं निजीकरण की नीतियों का हमारी शिक्षा व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ रहा है और सार्वजनिक धन से की जाने वाली शिक्षा व्यवस्था किसके हित साधन का जरिया बनी हुई है ? इन्हीं सवालों का ऐतिहासिक संदर्भों एवं वर्तमान परिदृश्य में यह व्याख्यान पड़ताल करता है। यह व्याख्यान शिक्षा विमर्श की व्याख्यान शृंखला में दिया गया है।

लेखक परिचय :

जैव-रसायन एवं मॉलीक्यूलर बायॉलोजी में पी. एच.डी (कैलिफॉर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी); मध्यप्रदेश में किशोर भारती एवं होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के संस्थापक; भूतपूर्व डीन-शिक्षा संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय; वरिष्ठ अध्येता-नेहरू स्मारक संग्राहलय एवं पुस्तकालय; सदस्य केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड एवं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखाः 2005; अध्यक्ष- 'काम एवं शिक्षा' पर बने राष्ट्रीय फोकस समूह (एनसीईआरटी)

पुस्तकें- शिक्षा में बदलाव का सवाल(ग्रन्थशिल्पी प्रकाशन नई दिल्ली), सह-संपादक -'संघर्ष और निर्माण' (राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली)

सम्पर्क :

ई-8/29, सहकार नगर, भोपाल-462039, मध्यप्रदेश

साथियो, बहुत ही प्यार भरा परिचय रोहित भाई ने दिया। उसमें मुझे केवल एक छोटा-सा संशोधन करना है। मेरी पीएचडी माइक्रो बायोलोजी में नहीं है। मेरी पीएचडी मॉलीक्यूलर बायोलोजी में है। इन दोनों में एक दार्शनिक अन्तर है और इस अन्तर के कारण ही मुझे बल मिला है कि मैं शिक्षा के क्षेत्र में लगातार सिद्धान्त और संघर्ष की बात कर पाया हूं। मैं इसका पूरा श्रेय मॉलीक्यूलर बायोलोजी में हुई मेरी ट्रेनिंग को देता हूं।

मैं इतिहास के बारे में बात करूंगा क्योंकि जो बात इतिहास से नहीं जुड़ती उसमें जरूर तदर्थवाद आ जाता है। आज से सवा सौ साल पहले 1882 में जब ब्रिटिश साम्राज्य ने पहला भारतीय शिक्षा आयोग गठित किया, जिसको हंटर आयोग के रूप में जाना जाता है, उस आयोग के सामने महात्मा ज्योति वा फुले ने बहुत ही शास्त्रीय और गहरे ढंग से लिखा हुआ एक ज्ञापन पेश किया। भारतीय अंग्रेजी में वो ऐसा ज्ञापन है जिसको आज भी हम बार-बार पढ़ें तो बहुत सारी गड़बड़ें जो हिन्दुस्तान में हो रहीं हैं, वो समझ में आने लगेंगी। उन्होंने स्कूली शिक्षा और विश्वविद्यालयी शिक्षा के बारे में बहुत-सी बातें कहीं। परन्तु जिस बात का मैं यहां विशेष रूप से उल्लेख करना चाहता हूं वो बात संसाधनों को लेकर थी। उन्होंने कहा कि बड़ी बिडम्बना है कि ब्रिटिश सत्ता जो राजस्व इकट्ठा करती है वो हिन्दुस्तान की मेहनतकश आवाम के द्वारा पैदा किया हुआ राजस्व है। किसानों, मजदूरों और कारीगरों के द्वारा पैदा किया हुआ राजस्व है। लेकिन उससे जो शिक्षा व्यवस्था खड़ी की गई है उसका प्रमुख लाभ मुट्ठीभर अभिजात तबके और ऊपरी मध्यम वर्ग के लोगों तक ही पहुंच पाता है। आगे उन्होंने यह भी जोड़ा कि यह वो तबका है जो शिक्षा का सारा लाभ समेट लेता है और जो स्वयं कोई उत्पादन नहीं करता, जो स्वयं परजीवी है। हम शायद उसी तबके के सदस्य हैं इसीलिए यहां राजस्थान विश्वविद्यालय के सभागार में मौजूद हैं। महात्मा फुले यदि आज जीवित होते तो हिन्दुस्तान में जिस तरीके से संसाधन पैदा हो रहे हैं और उनका न केवल शिक्षा बल्कि पूरी अर्थव्यवस्था और पूरे विकास के प्रश्न पर मुट्ठीभर लोगों को लाभान्वित करने के लिए जिस तरह से उपयोग आज भी होता है, मेरा विश्वास है कि वे इसके ऊपर अपनी सवा सौ साल पुरानी टिप्पणी भी दोबारा दोहराते।

1911 में इम्पीरियल ऐसेम्बली के सामने गोपाल कृष्ण गोखले ने हमारे समकालीन इतिहास का सबसे पहला मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का बिल पेश किया। उस पर जो बहस हुई उसमें उनका जमकर प्रतिरोध हुआ। जो मुखर प्रतिरोध हुआ वो दो तरफ

से हुआ। पहले प्रतिरोध का नेतृत्व वर्तमान बिहार के दरभंगा के महाराजा की ओर से हुआ। जिन्होंने देश भर के बड़े-बड़े सामन्तों और जमींदारों के 11000 दस्खत इकट्ठे करके ज्ञापन पेश किया। जिसमें लिखा था यदि मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देश में लागू हो गई तो हमारे खेतों- खलिहानों में मजदूरी कौन करेगा? ये बात आज भी कही जाती है, चाहे चन्द एक दिन पहले 10 अक्टूबर को भारत सरकार ने एक बार फिर ढाबों में और खेतों में काम करने वाले बाल मजदूरी पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। ये बातें आए दिन दोहरा दी जाती हैं। ये 1911 से लेकर अभी तक दोहराई जा रही हैं। दूसरा प्रतिरोध बम्बई के नवधनाढ्य वर्ग से उभर कर आया। वहां का नवधनाढ्य वर्ग जो उस समय नई पूंजी पैदा कर रहा था। जो नवधनाढ्य वर्ग बंबई में उभर रहा था इसने भी खड़े होकर विरोध किया। उन्होंने कहा कि अभी भारत इतना परिपक्व नहीं है कि मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा की बात कर सके और इतने संसाधन भी कहां हैं इस गरीब देश के पास। वो बिल कभी पास नहीं हो पाया। आज भी पास नहीं हो पाया 2006 में भी। (जमशेद जी टाटा के घराने ने धनबाद के इलाके जमशेदपुर में जब इस्पात का कारखाना बनाया था मयूरभंज में, जो आजकल उड़ीसा में है। मयूरभंज से टाटा हाऊस ने नया अनुबंध दस्खत किया था जिसमें मयूरभंज के लोहा पत्थर को पाने के लिए मुफ्त का अधिकार मिल गया था बिना कोई पैसे दिए, जो आज तक कायम है।)

1937 में जब वर्धा में आजादी की लड़ाई के दौरान महात्मा गांधी के नेतृत्व में अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन हुआ जिसमें उन्होंने बड़े जोर-शोर से, जिसका जिक्र अभी रोहित जी ने किया कि, उत्पादक काम और ज्ञान का एक अभिन्न रिश्ता है, जो भारतीय स्कूली पाठ्यचर्या की बुनियाद बनना चाहिए। इसकी बात करते हुए उन्होंने कहा कि सबसे पहला कर्तव्य नौ प्रान्तों के नवनिर्वाचित सरकारों का, जो कांग्रेस के नेतृत्व में बनी थीं, उनका सबसे पहला कर्तव्य है और उनके सात प्रान्तों के सब शिक्षा मंत्री वहां मौजूद थे। उन सात प्रांतों के शिक्षा मंत्रियों को उन्होंने चुनौती दी कि आपका सबसे पहला कर्तव्य है कि आप अपने-अपने प्रांतों में लौटकर जाएं, उस समय प्रारंभिक शिक्षा सात साल की मानी जाती थी, और सात साल की प्रारंभिक शिक्षा सब बच्चों तक पहुंचाने का काम करें और उसको उत्पादक काम और ज्ञान के सिद्धान्त के रिश्ते के आधार पर करें। ये बहुत उल्लेखनीय बात है कि सात प्रांतों के मंत्रियों ने मिलकर बापू से कहा कि बापू इसके लिए पैसा कहां है। गांधी ने कहा अगर पैसा नहीं है तो त्यागपत्र दे दो। मंत्री घबराते हुए लौटे और यह भी बहुत उल्लेखनीय बात है कि अगले दो-तीन सालों में, 1937 के बाद, अनेक प्रांतों में बहुत तेजी के साथ प्रारंभिक शिक्षा को फैलाने का काम हुआ। जिसके रिकॉर्ड मौजूद हैं और वो रिकॉर्ड बताते हैं कि चाहें तो कितनी जल्दी कदम आगे बढ़ाया जा सकता है। लेकिन 1942 में जब भारत छोड़ो का नारा लगा तो सरकारों ने त्यागपत्र दे दिया और काम रुक गया।

1949 में एक और बड़ी बढ़िया बहस हुई संविधान सभा के दौरान। जब अनुच्छेद 45, शिक्षा का अनुच्छेद, जो कहता था कि 14 साल तक के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा संविधान शुरू होने के दस साल के भीतर दे दी जाए और जिसे राज्य के नीति निर्धारक सिद्धान्तों के खंड चार में रखा गया था। इसके बावजूद भी वहां पर लड़ाई हुई कि इसको खंड तीन में डालकर मौलिक अधिकार का दर्जा दिया जाए। लेकिन बाबा साहब अंबेडकर लड़ाई में अकेले पड़ गए थे। बाबा साहब अंबेडकर से एक सदस्य ने खड़े होकर यह पूछा, जो रिकॉर्ड में दर्ज है, कि आप मेहरबानी करके अनुच्छेद 45 में जो 14 साल की उम्र का जिक्र किया है कि इस उम्र के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा दे दी जाएगी, उसको घटाकर 11 साल कर दीजिए क्योंकि हिन्दुस्तान एक गरीब देश है। हमारे पास संसाधन कहां हैं 14 साल की उम्र तक के बच्चों को शिक्षा देने के। बाबा साहब ने जो जबाव दिया ये 10 अक्टूबर को केन्द्रीय सरकार ने बाल मजदूरी के नाम पर जो तमाचा दिया है, उस के लिए भी इसे याद करने की जरूरत है। बाबा साहब ने कहा कि, अगर आप हमारी प्रारूप कमेटी के मिनिट्स को पढ़ें तो इसका कारण हमें मिल जाएगा कि 14 साल की उम्र क्यों रखी है और 11 साल की क्यों नहीं रखी। क्योंकि 11 साल की वो नाजुक उम्र है जब हिन्दुस्तान के करोड़ों बच्चे बाल मजदूर बनते हैं और हमारा मानना है कि आजाद हिन्दुस्तान में इन बच्चों की जगह खेत-खलिहान और कारखाने नहीं हैं, उनकी जगह स्कूल है। आज भी बाबा साहब अंबेडकर यही बात दोहरा सकते हैं क्योंकि आज के जो आंकड़े हैं, बहुत दर्दनाक आंकड़े हैं। आज आधे से अधिक बच्चे प्रारंभिक शिक्षा से वंचित हैं, ये सरकारी दस्तावेज बताते हैं। जमीन की हकीकत इससे काफी ज्यादा बुरी है। सरकारी दस्तावेज स्वयं कह रहे हैं और प्रधानमंत्री उन दस्तावेजों का जिक्र करके दुख प्रकट कर चुके हैं कि क्या कारण हैं कि सन 2006 में भी आधे से अधिक बच्चे स्कूल से बाहर हैं?

यदि आप यह जानना चाहें कि माध्यमिक शिक्षा कितने बच्चों को उपलब्ध है तो उसका उत्तर है कि बामुश्किल 25 प्रतिशत से 30 प्रतिशत के बीच, और अनुसूचित जाति और जनजाति यानी दलित और आदिवासी बच्चों में यह आंकड़ा मुश्किल से 20 प्रतिशत है और यही आंकड़ा और इससे भी शायद कम आंकड़ा मुस्लिम बच्चों के बारे में होगा क्योंकि उनका कोई विश्वसनीय सर्वेक्षण नहीं होता या नहीं किया जाता है। लड़कियों में हालत और भी बुरी है। आदिवासी लडकियों का आंकड़ा बताता है कि बड़ी मुश्किल से 17 प्रतिशत लड़कियां 10वीं तक पहुंच पाती हैं, पास तो उसमें से आधे से भी कम होती हैं। क्योंकि आज माध्यमिक शिक्षा में जो असफलता की दर है वो 50 प्रतिशत से अधिक है और उच्च माध्यमिक शिक्षा में जिसका परीक्षा फल घोषित होने पर इतना हो-हल्ला हर साल होता है जैसे हिन्दुस्तान में कुछ हो ही नहीं रहा है सिवाय 12 वीं के परिणाम के। और 12 वीं की कक्षा में बड़ी

मुश्किल से 8 से 9 प्रतिशत बच्चे हिन्दुस्तान के हैं। कुछ वर्गों में यह 10 प्रतिशत है। दलित आदिवासियों में मुश्किल से 5 से 6 प्रतिशत बच्चे हैं। लड़कियां और भी कम हैं। यह हकीकत है। यह सरकारी दस्तावेजों की हकीकत है, जमीन की हकीकत, मैं दोहरा दूं, इससे ज्यादा बुरी है। इसका भी एक उदाहरण दे दूं। एक बहुत दिलचस्प प्रसंग हुआ हाल ही में। एनसीईआरटी हर पांचवें साल एक बड़ा सर्वेक्षण करता है। उनका सातवां सर्वेक्षण अभी छपने वाला है। उसके कुछ आंकड़े उन्होंने इंटरनेट पर डाल दिए हैं। बिहार के जाहनाबाद जिले के शिक्षा के एक कार्यकर्ता ने वे आंकड़े देखे, जिसमें ये दावा किया गया था कि ये हर गांव के स्कूलवार आंकड़े हैं। उन्होंने इंटरनेट पर क्लिक करते-करते अपने स्कूल को, अपने गांव के स्कूल को खोज लिया। उसमें लिखा था कि इस स्कूल में कक्षाओं के लिए चार कमरे हैं। बरामदा है, लड़के और लड़कियों के टॉयलेट अलग-अलग हैं। पीने के पानी की अच्छी व्यवस्था है और पांच शिक्षक नियुक्त हैं। उन्होंने अपने गांव के स्कूल की फोटो खींची और इंटरनेट पर बहुत सारे लोगों को भेजी, एनसीईआरटी के निदेशक को भी भेजी। उसमें टूटा हुआ स्कूल भवन, जिसमें कोई छत नहीं है, केवल टूटी हुई दो तरफ दीवारें हैं, बाकी दो तरफ की तो दीवारें भी नही हैं। एक भी शिक्षक वहां नियुक्त नहीं है। कोई कक्षाएं नहीं लगती हैं। उस जाहनाबाद के कार्यकर्ता ने एनसीईआरटी के निदेशक से पूछा कि, मैं मेरे गांव की हकीकत है, जो मेरे सामने है, उस पर विश्वास करूं या सातवें सर्वेक्षण पर विश्वास करूं। तो हकीकत में तो बहुत फर्क है। इस पर इसलिए बहस करना जरूरी है कि अगर हालात ये हैं तो किस तरह के हिन्दुस्तान को बनाने की बात आज हम कर रहे हैं।

एक और हालात, विश्वविद्यालय स्तर की उच्च शिक्षा की 18 से 23 उम्र का जो आयु समूह है जिसके बच्चे विश्वविद्यालयों, कॉलेजों या तकनीकी शिक्षा में जाते हैं, उस आयु समूह के महज 7 प्रतिशत बच्चे उच्च शिक्षा में हैं। यानी 93 प्रतिशत नहीं हैं। चीन में यह आंकड़ा 16 प्रतिशत से ऊपर है, भारत के दुगने से ज्यादा। और जो इस समय वहां के आंकड़े दिख रहे हैं वो बताते हैं कि बहुत जल्दी ही ये आंकड़ा 20 प्रतिशत को पार कर जाएगा। हमारा यह आंकड़ा सात प्रतिशत से ऊपर नहीं जाने वाला बल्कि अभी साढे छः प्रतिशत ही है। एक अर्थशास्त्रीय अनुमान है कि किसी भी विकसित राष्ट्र के लिए यह जरूरी है कि उच्च शिक्षा में कम से कम 22 प्रतिशत विद्यार्थी उस आयु सीमा के हों। लेकिन जिस तरीके से उच्च शिक्षा का निजीकरण हो रहा है, राजस्थान उसमें एक अग्रणी राज्य है। निजीकरण की बदौलत जिस तरीके से शिक्षा मंहगी होने वाली है तो यह सात प्रतिशत का आंकड़ा भी गिरकर तीन प्रतिशत हो जाएगा और केवल अभिजात्य तबके और ऊपरी मध्यम वर्ग के परिवारों में यह हैसियत होगी कि वे शिक्षा को खरीद सकेंगे। और फिर हिन्दुस्तान कैसा बनेगा ? सन 2020 में हमारे राष्ट्रपति अब्दुल कलाम का बार-बार दोहराया हुआ आदर्श कि हम एक तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनेंगे और अभी शायद विश्व बैंक के अध्यक्ष ने भी दो-तीन दिन पहले इस पर अपनी मोहर लगा दी है कि भारत जरूर तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगा। ये सब किस तरीके से होगा, ये सोचने का सवाल है, अगर हमारे ये हालात हैं।

हम आज शिक्षा के अधिकार के सवाल को किस नजर से देखें ? 1993 में सुप्रीम कोर्ट ने एक बहुत मजबूत फैसला दिया। जिसको उन्नीकृष्णन फैसले के नाम से जाना जाता है। उस फैसले में उन्होंने यह विवेचना की कि खंड चार जो राज्य के नीति निर्धारक, नीति निर्देशक सिद्धान्तों वाला खंड है जिसमें यह आग्रह नहीं होता कि राज्य जरूर उसका पालन करें, लेकिन राज्य के सामने उसको पाने का एक निर्देश है, एक आदर्श है। चौदह साल तक के बच्चों की शिक्षा का सवाल उस खंड में रखा हुआ था। जैसा मैंने पहले भी बताया लेकिन 1993 में सुप्रीम कोर्ट ने इसकी ये व्याख्या की कि खंड तीन, जो मौलिक अधिकारों का खंड है, उसमें जीने का हक जो अनुच्छेद 21 में दिया हुआ है वो जीने का हक अधकचरा है, अधूरा है, अगर उसमें ज्ञान को पाने का हक शामिल नहीं है। बिना ज्ञान के जीवन, कैसे दार्शनिक अंदाज में सुप्रीम कोर्ट पूछता है, उसके लिए विवेकानन्द, गांधी, टैगोर को उद्धृत करता है और फिर वह आदेश कहता है कि यह आवश्यक है कि जीने का हक सचमुच देने के लिए ज्ञान का भी हक सबको मिले। और इसीलिए अनुच्छेद 45 में 14 साल तक के बच्चों को जो ज्ञान के हक की बात की गई है, ज्ञान के देने की बात की गई है उसको अनुच्छेद 21, जीने के हक के साथ, जोड़कर देखा जाए। और इसलिए यह घोषित किया जाता है कि 14 साल की उम्र तक के बच्चों का जो शिक्षा का अधिकार है वो मौलिक अधिकार बन जाता है। जैसे ही मौलिक अधिकार की घोषणा सुप्रीम कोर्ट ने की तो पूरे भारतीय राज्य की व्यवस्था गड़बड़ा गई। इसका मतलब होता है कि अब इस उम्र के बच्चों को शिक्षा देने के लिए अर्थव्यवस्था में प्राथमिकताएं बदल जाती हैं। संसाधनों के वितरण की प्राथमिकताएं बदल जाती हैं। जो हमारा इकॉनोमिक केक है उसको नये सिरे से बांटने की बात की जाती है। तभी यह मौलिक अधिकार होगा। फिर एक लम्बी कवायद शुरू हुई जिसकी बारीकियां और उसकी गहराइयों में मैं आपको नहीं ले जाऊंगा, उसके लिए समय नहीं है, लेकिन अगले आठ-दस साल तक लम्बी कवायद चली कि किस तरीके से सुप्रीम कोर्ट के इस मौलिक अधिकार की घोषणा से छुटकारा पाया जाए। नाना प्रकार की कमेटियां बनीं। और हर अगली कमेटी ने पिछली कमेटी से एक कदम आगे बढ़कर मौलिक अधिकार की अवधारणा को विकृत किया और खत्म करने की कोशिश की। अब इसकी बारीकियों में नहीं जा रहा हूं। यह पूरी कहानी है इसको मैं कई बार लिख चुका हूं। सन् 2001 में तत्कालीन सरकार को केन्द्र में रास्ता मिल गया सुप्रीम कोर्ट की इस घोषणा से छुटकारा पाने का। उस रास्ते का नाम है 86 वां संविधान संशोधन। 86 वां संविधान संशोधन सन 2001 में लोकसभा में पारित हुआ। 2002 के अप्रैल में राज्यसभा

में पारित हुआ और 12 दिसम्बर 2002 को राष्ट्रपति कलाम के उसके ऊपर दस्खत हुए। ये संशोधन क्या कहता है? ये संशोधन कहता है कि क्यों अनुच्छेद 45 जो खंड चार में रखा हुआ था जहां मौलिक अधिकार नहीं था। इसको वहां से हटाकर खंड 3 में 21 (क) नम्बर के अनुच्छेद के रूप में शामिल किया जाता है ताकि ये मौलिक अधिकार हो जाए। अगर महज इतना ही किया होता तो सुप्रीम कोर्ट के आदेश की और उसकी घोषणा की पूरी भावना बची रहती। लेकिन केवल इतना नहीं किया। ये करते-करते उसमें जो लिखा था अनुच्छेद 45 में कि 14 साल तक के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा दी जाए उसको घटाकर 6 - 14 वर्ष कर दिया गया। यानी 6 वर्ष की उम्र से उस समय की जनसंख्या के अनुसार 17 करोड बच्चों को (उस समय की जनसंख्या के आधार पर) शिक्षा के मौलिक अधिकार से वंचित कर दिया गया। अधिकार दिया नहीं, वंचित कर दिया गया। यह था 86 वां संविधान संशोधन। और जिस उम्र के बच्चों को अधिकार का दावा किया गया कि यह अधिकार दिया जा रहा है, 6 से 14 वर्ष के बच्चों को, उनको भी अधिकार दरअसल शर्त के साथ दिया गया और शर्त उसी अनुच्छेद 21(क) में लिखी हुई है। उसमें लिखा हुआ है कि यह मुफ्त अनिवार्य शिक्षा उस रीति से दी जाएगी जिस रीति का निर्धारण राज्य कानून बनाकर करेगा। यानी बिना शर्त के नहीं दी जाएगी। मौलिक अधिकारों के खंड तीन में अब एक मात्र यही मौलिक अधिकार है जो सशर्त मिलता है। बाकी सभी अधिकार बिना किसी शर्त के दिए हुए हैं। बराबरी का अधिकार, अभिव्यक्ति का अधिकार, धर्म चुनने का अधिकार, न्याय का अधिकार, ये सारे अधिकार बिना शर्त के हैं और शर्त के साथ शिक्षा का अधिकार है। चूंकि राज्य को मालूम था कि शिक्षा का अधिकार यदि बिना शर्त के दिया तो फिर राज्य को वो निर्णय लेने पड़ेंगे जो राज्य नहीं लेना चाहता था यानी अभिजात तबके और सवर्णों के हितों के खिलाफ फैसले लेने पड़ेंगे। ये हालात कैसे बने इस पर भी विचार करने की जरूरत है।

1991 में एक बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन भारत की अर्थव्यवस्था में हुआ है जिसको नई आर्थिक नीति के रूप में जानते हैं। तत्कालीन सरकार ने इसकी घोषणा करके हिन्दुस्तान की अर्थव्यवस्था के दरवाजे वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए खोल दिए और घोषणा की कि अब जल्दी से जल्दी भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक अर्थव्यवस्था का अंग बन जाएगी। लेकिन यह नहीं बताया कि इस नीति की घोषणा करने के वक्त हमारी सरकार ने कुछ शर्तों पर भी हामी भरी और उस पर दस्खत किए। उनमें से अनेक शर्तों में से एक शर्त का जिक्र मैं करूंगा जो शिक्षा और स्वास्थ्य से और जनकल्याण के विषयों से संबंध रखती है। उस शर्त का नाम है संरचनात्मक समन्वयन कार्यक्रम अंग्रेजी में स्ट्रेक्चरल एडजेस्टमेन्ट प्रोग्राम। ये शर्त हमारी सरकार के सामने अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक ने रखी। इस शर्त के तहत यह कहा गया कि अगर आपको अन्तर्राष्ट्रीय वित्त पोषित संस्थाओं से कर्ज या अनुदान चाहिए तो आपको शिक्षा, स्वास्थ्य और जनकल्याण के तमाम अनेक कार्यक्रमों पर अपना बजट लगातार घटाना पड़ेगा, बढ़ाना नहीं घटाना पड़ेगा। ये शर्त रखी अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक ने जो हमने स्वीकारी और उसका परिणाम आज हम देख रहे हैं, कई रूपों में देखा जा सकता है। आने वाले दस सालों में 90 के दशक में उसके बाद इस सदी के 6 सालों में लगातार शिक्षा पर किया जाने वाला खर्च भारतीय अर्थव्यवस्था के पैमाने पर घटता गया। घटाया गया, अपने आप नहीं घटा। जैसा आप जानते हैं कोठारी आयोग ने यह बहुत पुरानी अनुशंसा की थी जिसकी बार-बार दुहाई हमारे राजनीतिक दल देते रहते हैं कि अगर सभी बच्चों को उम्दा गुणवत्ता की शिक्षा देनी है तो हमारे पूरे सकल राष्ट्रीय उत्पाद यानी दूसरे शब्दों में, हमारी राष्ट ्रीय सालाना आमदनी का कम से कम 6 प्रतिशत शिक्षा पर निवेशित होना चाहिए, लगना चाहिए। ये उद्देश्य 1966 से हमारे सामने हैं जो 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में संसद में भी शिक्षा नीति बनाकर शामिल किया है और आज भी वहां पर है। लेकिन 1991 में जब हमारे सकल राष्ट्रीय उत्पाद का शिक्षा पर लगभग 4 प्रतिशत खर्च हो रहा था, शिक्षा के सभी चरणों पर, पूर्व प्राथमिक से लेकर व्यावसायिक शिक्षा तक, वो 90 के दशक में लगातार घटाया गया और आज घटते-घटते 3.5 प्रतिशत से भी कुछ कम हो गया है। अब आप कहेंगे कि 0.5 प्रतिशत से क्या फर्क पड़ता है?

हिन्दुस्तान की अर्थव्यवस्था बहुत बड़ी अर्थव्यवस्था है। ये लाखों-करोड की है और इस लाखों करोड की अर्थव्यवस्था में 0.5 प्रतिशत का मतलब दसियों हजार करोड रुपये होता है। और इसलिए 0.5 प्रतिशत कम होना और लगातार घटते रहना यह दिखाता है कि भारतीय राज्य की क्या मंशा थी और वो पूरी हुई। देखिए, हिन्दुस्तान जैसे देश में जहां 1991 में लगभग 8 लाख सरकारी स्कूल चलते थे आज 10 लाख 30 हजार स्कूल चलते हैं। इतनी बड़ी स्कूल अर्थव्यवस्था दुनिया में चीन के बाद सबसे बड़ी सरकारी स्कूलों की शिक्षा व्यवस्था है। इतनी बडी शिक्षा व्यवस्था में घटौती करना, कटौती करना आसान बात नहीं है। जहां पर 37 लाख स्कूली शिक्षक नियुक्त हो चुके थे। 8 लाख स्कूल काम कर रहे थे प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर के और भारत की सरकार को भी मालूम था कि यदि कटौती की गई तो बहुत जबरदस्त प्रतिरोध होगा, हल्ला मच जाएगा। विश्व बैंक तैयार था, उसको मालूम था कि यह बात हो सकती है, तो उन्होंने कहा कि हम आपको थोड़ा बहुत अनुदान देते जाएंगे। आप अगर 1 रुपया काटेंगे तो 10 पैसे का अनुदान दे देंगे और दस पैसा कर्ज में दे देंगे। आप घबराइए मत। आपके यहां क्रांति नहीं आने देंगे। और इस सशर्त लिए कर्ज और अनुदान के परिणाम में हमारे

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम 1990 के दशक का तथा उसके तमाम और रूप जो अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग तरीके से आए। इस राज्य में कुछ और नाम था, बिहार में कुछ और नाम था, आंध्र प्रदेश में कुछ और नाम था। इन कार्यक्रमों में किस प्रकार से संभव हुआ कि खर्च कम हो। खर्च और इन कार्यक्रमों का क्या रिश्ता है यह समझना जरूरी है और आम जनता इस बात को कभी पकड़ नहीं पाई क्योंकि राजनैतिक दलों ने पकड़ने नहीं दिया। खर्च कम करने की रणनीति विश्व बैंक ने दी है। हमारे नीति बनाने वालों ने उसे सहर्ष स्वीकारा और हिन्दुस्तान में प्रतिपादित किया। कई प्रकार की नीतियां थीं, रणनीतियां थीं। मैं कुछ उदाहरण देता हूं, अब शिक्षा साक्षरता के समतुल्य मानी जाएगी, शिक्षा के जो वृहद उद्देश्य हैं, शिक्षा एक बेहतर समाज के निर्माण के लिए होती है, शारदा जी इस विषय की बहुत बड़ी विद्वान हैं उन्होंने हाल ही में एनसीईआरटी के लिए बहुत बढ़िया रिपोर्ट तैयार की है कि शिक्षा के उद्देश्य क्या होने चाहिएं। शिक्षा एक बेहतर समाज के निर्माण की प्रक्रिया है, एक बेहतर इंसान बनाने की प्रक्रिया है। हिन्दुस्तान के संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में यह कहना बिल्कुल गलत नहीं होगा कि शिक्षा का उद्देश्य कम से कम हिन्दुस्तान के संदर्भ में एक लोकतान्त्रिक, समता मूलक और धर्म निरपेक्ष समाज का निर्माण करना है और एक प्रबुद्ध समाज का निर्माण करना है जो अंधविश्वासों से दूर हो। जो तमाम दुराग्रहों से दूर हो, जो इंसान को, इंसान की इंसानियत को पहचान सके। एक ऐसे समाज को निर्माण करने वाली जो शिक्षा होगी वही सही शिक्षा हो सकती है। यह केवल नारेबाजी नहीं है। अक्सर लोग कहते हैं कि इस तरह की बात करना तो नारेबाजी है। क्योंकि अगर आप मान लेते हैं कि लोकतांत्रिक समाज बनाना शिक्षा के उद्देश्य है, इस पर अभी चर्चा करना संभव नहीं होगा। आप शारदा जी से कहिएगा वो चर्चा कर लेंगी। मिसाल के तौर पर, एक लोकतांत्रिक समाज के निर्माण के लिए शिक्षा आवश्यक है तो फिर आप ऐसा उच्च माध्यमिक विद्यालय नहीं चला सकते जिसमें प्रिंसिपल से लेकर चपरासी तक भेदभाव हो और पूरी अलग-अलग श्रेणी के लोग हों। और जो चपरासी है वो केवल पानी लाए और झाड़ू लगाए और जो प्रिंसिपल है वो केवल ऑर्डरों में दस्खत करे। फिर शिक्षा के जरिए लोकतांत्रिक समाज नहीं गढ़ा जा सकता। तब लोकतांत्रिक समाज का प्रतिरूप हमारा विद्यालय होना चाहिए। अगर धर्म निरपेक्ष समाज बनाना है तो हमारे स्कूलों में धर्मनिरपेक्ष समाज गढ़ने की आवश्यक संज्ञानात्मक समझ और भावनात्मक समझ होनी चाहिए। और संज्ञान एवं भाव का जो रिश्ता है यह स्थापित होना चाहिए। ये नहीं है तो हिन्दुस्तान में आप धर्म निरपेक्ष समाज गढ़ नहीं सकते। इस विषय पर अलग ये व्याख्यान करने की जरूरत होगी। एक ऐसे समाज को बनाना शिक्षा का उद्देश्य है न कि साक्षर करना। लेकिन विश्व बैंक के चलते और उससे पहले भी क्योंकि विश्व बैंक का एजेंडा तो अफ्रीका और लेटिन अमेरिका में हिन्दुस्तान से पहले लागू हो गया था और सफल हो चुका था।

लैटिन अमेरिका की शिक्षा 1991 के पहले बरबाद हो चुकी थी, अफ्रीका की शिक्षक शिक्षा संस्थान बरबाद कर दिये गये थे। कीनिया का पूरा रिकॅार्ड है कि किस तरह से वहां की शिक्षक शिक्षा संस्थान विश्व बैंक के कर्जे को लेकर बरबाद हुईं। हिन्दुस्तान में यह प्रक्रिया 1991 तक थमी हुई थी। उसके बाद तेजी से शुरू हुई, खुली छूट मिल गई और उसके बाद देखत-देखते हिन्दुस्तान का एजेण्डा शिक्षा से बदलकर साक्षरता का हो गया, केवल उसमें भी कुछ कौशल प्राप्त करने का। स्कूल नहीं देंगे, स्कूल की जगह पर अनौपचारिक केन्द्र देंगे जो शाम को दो घंटे चलेंगे। उसका तर्क यह होगा कि हमारे बाल मजदूर दिनभर बड़ी मजदूरी करते हैं, थके-मांदे घर लौटते हैं तभी तो बेचारे दो घंटे ही तो पढ़ सकते हैं। वो दो घंटे भी पढ़ लें तो उनके लिए काफी है यानी साक्षर हो जाएं तो काफी है। केन्द्र शाम को होगा इसलिए उसके लिए शिक्षक देना जरूरी नहीं होगा, उसकी जगह पर शिक्षाकर्मी दिए जाएंगे या उनकी जगह अनुदेशक दिए जाएंगे। उनको तमाम प्रकार के इनाम देने शुरू हुए 90 के दशक में और 95-96 आते-आते यह पूरी नई व्यवस्था खड़ी हो गई कि अब हिन्दुस्तान में शिक्षक का कैडर खत्म कर दिया जाए। उसकी जगह पैरा शिक्षक रखे जाएंगे। जो आज की नीति है, यह साफ नीति बन चुकी है, अब शिक्षक नहीं मिलेगा। मध्यप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री जो इतने निर्भीक थे, उन्होंने 1995 में घोषणा कर दी कि शिक्षा का कैडर अब मृतप्रायः बनने जा रहा है और बना दिया, अगले तीन साल में यह काम पूरा कर दिया।

पिछले दस साल में मध्यप्रदेश में प्राथमिक स्तर से लेकर एम. ए. के स्तर तक एक भी नया शिक्षक नियुक्त नहीं हुआ है। बिहार में इस काल में एक भी नया स्कूल शुरू नहीं हुआ है। यह सब तथ्य हैं। पैरा शिक्षक होगा, शिक्षक की जगह पैरा शिक्षक क्या चीज होगी? पैरा शिक्षक एक ऐसा व्यक्ति होगा जिसके पास शिक्षक बनने की अर्हता या क्वालीफिकेशन नहीं है। वह ऐसा व्यक्ति होगा जिसको शिक्षक बनने के लिए प्रशिक्षण नहीं दिया गया है। यह माना गया कि गरीब बच्चों को पढ़ाने के लिए क्यों प्रशिक्षण की आवश्यकता है, क्यों पैसे खर्च किए जाएं ? खर्च बचाओ। वो एक ऐसा व्यक्ति होगा जिसको एक सम्मानजनक वेतन नहीं मिलेगा। उसको दैनिक मजदूरों के जैसे दैनिक मजदूरी के रेट पर ठेके पर रखा जाएगा। गुरु की गरिमा खत्म करने की नीति यह निकाली गई। जब गुरु की गरिमा खत्म हो गई फिर कहा गया कि आपकी जरूरत ही क्या है ? दस साल में उसकी गरिमा खत्म करके अब सवाल खड़े कर दिए कि हम शिक्षक बनाते ही क्यों हैं ? विश्व बैंक अब नाना प्रकार के शोध आयोजित कर रहा है, यह साबित करने के लिए कि हिन्दुस्तान को शिक्षकों की आवश्यकता नहीं है। ये शोध अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में छप रहे हैं। स्कूल की जगह पर अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र वो भी अलग-अलग रूपों में खोले गए। कभी उसको वैकल्पिक स्कूल कहा गया। कभी उसको शिक्षा गारन्टी केन्द्र कहा गया। और जब सर्व शिक्षा अभियान आया तो और नये नाम लाए गए। उसमें

कहा गया कि 'बैक टू स्कूल' कैम्प चलाए जाएंगे। और यह तथ्य है कि सर्व शिक्षा अभियान के तहत जो तीन महीने, चार महीने, छ महीने के बैक टू स्कूल कैम्प लगते हैं उसके बाद कोई स्कूल नहीं होता है। शिविर लगते हैं लेकिन स्कूल नहीं होता है। लेकिन उसमें जो बच्चे नामांकित होते हैं वो हमारे सकल दर्ज अनुपात का हिस्सा बन जाते हैं और बार-बार रिकॅार्ड किया जाता है कि इतने प्रतिशत बच्चे स्कूल पहुंच गए हैं। वो छः महीने के स्कूल के बाद शिविर छोड़ देते हैं, स्कूल आते ही नहीं। स्कूल तो जब आएंगे जब स्कूल होंगे। जब स्कूल होंगे ही नहीं तो स्कूल आएंगे कैसे? यह बात करते हुए बंध्याली के स्कूल का भी जिक्र कर लें।

आज सवेरे मैं बंध्याली स्कूल की स्थिति वहां की जनता से समझ के आया हूं। जहां पर बंध्याली स्कूल चलता है उस इलाके में जो 13 ढाणियां हैं, उन 13 ढाणियों के 1 किलोमीटर के अन्दर के इलाके में कहीं भी कोई प्राथमिक शाला सरकार ने शुरू नहीं की है जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मापदण्ड है। और एक बंध्याली स्कूल है जिसको हटाकर बाहर किया जा रहा है। जयपुर के बगल में जहां पर इतना बड़ा विकास, जयपुर विकास प्राधिकरण कर रहा है, जहां पर इंजिनीयरिंग कॅालेज खुल रहे हैं। जहां पर तमाम प्रकार के निजी विश्वविद्यालय खुलने वाले हैं। वहां की 13 ढाणियों के पास राजकीय मापदण्ड का उल्लंघन करते हुए एक भी प्राइमरी स्कूल के 1 किलोमीटर के अन्दर नहीं है। ये सब फैसले उस खर्च न करने की रणनीति की वजह से निकले हैं जो लगातार प्रतिपादित हुई है। तो शिक्षा की जगह साक्षरता होगी, स्कूल की जगह अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र होंगे और शिक्षक की जगह पैरा शिक्षक होंगे और कक्षाओं के जगह पर बहुकक्षायी अध्यापक होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड की अवधारणा के तहत एक बहुत अच्छा काम किया था। उसके लिए उनका साधुवाद जिन्होंने यह नीति बनाई। उन्होंने कहा कि ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड तब मायने रखता है जब हर प्राथमिक विद्यालय को, उसके संशोधन के बाद कहा गया, हर उच्च प्राथमिक विद्यालय में भी कम से कम तीन कमरे और तीन शिक्षक मिलें। और बहुत सारी बातें कही गईं थीं। इस मापदण्ड को घटाते हुए जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम ने कहा कि 2 कमरे काफी हैं और 2 शिक्षक काफी हैं। ये ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड का मापदण्ड भी बदला गया। एक कदम और आगे बढ़ते हुए डीपीईपी ने घोषणा कर दी कि एक शिक्षक पांच कक्षाओं को एक ही समय में पढ़ाने का चमत्कार कैसे करे इसके लिए हम प्रशिक्षण देंगे। आपसे और शायद आपसे नहीं आपके पोते-पोतियों पर कर्ज चढ़ाकर सैकडों करोड रुपये का 90 के दशक में देश भर में 18 राज्यों में प्रशिक्षण दिया गया कि एक शिक्षक एक ही समय में पांच कक्षाओं को पढ़ाने का चमत्कार कैसे करे। ये सब हो चुका है। वो सैकडों करोड रुपये आपसे नहीं जुटाएंगे, आपके पोते-पोतियों से जुटाएंगे। क्योंकि यह दीर्घकालीन कर्जा है। वो लौटाया जाएगा। कोई भी चीज नहीं है जो लौटाई नहीं जाएगी। ये सारे परिवर्तन हो चुके हैं, मैं तो इतिहास सुना रहा हूं। मैं आगे की बात नहीं कर रहा हूं और इन सारी विकृतियों और इन सारी कटौतियों का जो नया पैकेज बनाया गया, इस सदी में और दसवीं पंचवर्षीय योजना की शुरूआत में उस नए पैकेज का नाम था सर्व शिक्षा अभियान, उस नए पुलिंदे का नाम। और कहा गया कि इसके जरिए सन 2010 तक सब बच्चे 8 साल तक की प्रारंभिक शिक्षा पूरी कर लेंगे। अब तीन साल बाकी हैं और हकीकत हमारे सामने है कि आधे से अधिक बच्चे इस स्तर की शिक्षा से वंचित हैं। और ये हालात बदलने वाले नहीं हैं।

यूनेस्को ने एक ग्लोबल मॉनिटरिंग रिपोर्ट तीन साल पहले जारी की और दुनिया भर के देशों की इस हालात का जायजा लिया और बताया कि हिन्दुस्तान में 5 साल, विश्व बैंक तो 8 साल की शिक्षा की बात नहीं करता वो तो 5 साल की शिक्षा की बात करता है। तो जो 5 साल की प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य सर्व शिक्षा अभियान में निहित है वो सन 2015 तक भी पूरा नहीं होगा। इन्होंने ग्राफ बनाकर प्रोजेक्शन्स किए और साथ में यह भी कहा कि हिन्दुस्तान को किस श्रेणी में रखा जाएगा। उन्होंने सारी दुनिया के 130 देशों को अलग-अलग श्रेणियों में बांटा, स्कूली शिक्षा में कितनी प्रगति हो रही है उसके हिसाब से। हिन्दुस्तान सबसे आखिरी चौखट पर है। और हमारे साथ दक्षिण एशिया के सात में से केवल दो देश बचे हैं। जो दो देश बचे हैं हमारे साथ वे हैं नेपाल और पाकिस्तान। भूटान, बांग्लादेश, श्रीलंका और मालदीव हम से आगे निकल चुके हैं। मालदीव तो बहुत पहले आगे निकल गया था। श्रीलंका भी बहुत पहले आगे निकल गया था। अपनी सारी अन्दरूनी लड़ाइयों के बावजूद श्रीलंका 20 साल पहले हमसे आगे निकल गया था। अब हिन्दुस्तान के साथ पाकिस्तान और नेपाल पीछे हैं। और इसके साथ उस चौखट में सहारा के अफ्रीका के 10-12 मुल्क हैं छोटे-छोटे, जिनके नाम भी हमको याद नहीं रहते। और मध्यपूर्व के चार और देश हैं। इस प्रतिष्ठा के स्थान पर भारत को यूनेस्को ने पटक दिया है। आप बनते रहिए 2020 में सबसे बड़ी तीसरी अर्थव्यवस्था और महाशक्ति। महाशक्ति का एक अलग सवाल है कौन आपका रोल मॉडल है, कैसी महाशक्ति आपको बनना है ? क्या आपको भी इराक पर हमला करना है ? मुझे मालूम नहीं कि राष्ट्रपति कलाम अभी भी उस मॉडल की व्याख्या नहीं कर सके हैं। जब करेंगे तब सुन लेंगे कि कैसी महाशक्ति बनता है।

इन सारे प्रश्नों में एक बहुत महत्त्वपूर्ण सवाल है वो है शिक्षा के निजीकरण का, यह सवाल आज बहुत प्रबल रूप से उठ रहा है। जाहिर है इसको दुनिया के बाजार की ताकतें और हिन्दुस्तान की देशी बाजार की ताकतें तो उठा ही रही हैं, हिन्दुस्तान और विदेशों का कॉर्पोरेट जगत भी उठा रहा है। लेकिन इस समय तो हालात यह है कि सबसे तेजी से यह सवाल आज की तारीख में हमारा योजना

आयोग उठा रहा है। और योजना आयोग ने अपनी ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिपत्र में यह साफ-साफ लिख दिया है कि शिक्षा का अगर कोई समाधान होगा तो निजीकरण से होगा। पूर्व प्राथमिक शिक्षा से शुरू करके प्रोफेशनल शिक्षा तक, उनका एक ही फार्मूला है। लेकिन जैसा मैंने कहा भारत की 10,30000 स्कूलों की बढ़ी हुई शिक्षा व्यवस्था नष्ट करना आसान अभी भी नहीं है। इतना नष्ट करने के बाद भी अभी भी उसमें काफी जान बची है। बहुत बड़ी जान बची है। आज भी पहली से बारहवीं कक्षा तक 72 प्रतिशत नामांकन सरकारी स्कूलों में है। इतना सब होने के बाद भी। और अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग प्राथमिक कक्षाओं में 80 प्रतिशत से ऊपर है। यदि इसका निजीकरण करना है तो कई और नए कदम उठाने होंगे तब हमारी इस स्कूल प्रणाली को ध्वस्त करने की एक नई रणनीति अपनानी पड़ेगी। जो डायल्यूशन की रणनीति 1990 के दशक में डीपीईपी और फिर सर्व शिक्षा अभियान में अपनाई गई वो काफी नहीं होने वाली है। उसके बाद भी यह पूरी शिक्षा व्यवस्था टिकी रहेगी। अब नया तीर छोड़ा गया है जून के महीने से, जो तीर छोड़ा गया है उस तीर का नाम है वाऊचर प्रणाली। एक वाऊचर पैदा किया अचानक उभर के आ गया। मैंने आपको शिक्षा का इतना लम्बा इतिहास सुनाया लेकिन इसका कोई भी इतिहास हिन्दुस्तान में नहीं है। वाऊचर प्रणाली का प्रस्ताव कहां से निकला, किस कोने से अचानक ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना के दृष्टिपत्र में शामिल कर लिया गया। इसका उत्तर भी कोई नहीं देता है। कुछ तथ्य तो हमको मालूम हैं कि जुलाई 2005 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड यानी केब की 7 कमेटियों की रिपोर्ट केब में पेश की गईं। जहां पर हमारे राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के सारे शिक्षा मंत्री बैठे हुए थे और अर्जुन सिंह साहब उसकी अध्यक्षता कर रहे थे। उन सातों कमेटियों की किसी भी रिपोर्ट में वाऊचर व्यवस्था का जिक्र नहीं किया। ये तो हम जानते हैं। नवम्बर 2005 में शिक्षा के अधिकार का जो बिल बनाना था अनुच्छेद 21(क) के तहत उसका एक ड्राफ्ट बनाकर इंटरनेट पर डाला गया। उसमें भी वाऊचर व्यवस्था का कोई जिक्र नहीं है। नवम्बर 2005 तक तो किसी भी सरकारी दस्तावेज में और किसी भी गैर सरकारी प्रक्रिया में भी कोई विमर्श वाऊचर व्यवस्था में खड़ा नहीं हुआ है। लेकिन अचानक जून 2005 में ये प्रमुख रणनीति बतौर पेश किया जाता है। ये ताकत है आज उस बाजार की लॉबी की। वो कहां से नई व्यवस्था को लाकर हमारी शिक्षा नीति का रूप दे देती है, ये सोचने की और बड़ी चिन्ता की बात है। हमारा सब का सारोकार है। ये कहां से चीजें आ जाती हैं। इसके विपरीत दूसरे हालात देखिए, दूसरी हकीकत क्या है ?

कोठारी शिक्षा आयोग ने 1966 में समान स्कूल प्रणाली की अनुशंसा की। यह अनुशंसा करते हुए उस आयोग ने लिखा कि हमें बड़ी चिन्ता है कि हिन्दुस्तान में किस प्रकार से विभिन्न वर्गों, विभिन्न मजहबों, विभिन्न जातियों में समरसता आएगी। और उस समय जिस तरह से निजीकरण की शुरूआत हो रही थी, शुरूआती बिन्दु थे, वो बहुत छोटा रूप था उसका। हमें लग रहा है कि निजीकरण बढ़ता जाएगा, इसको रोकने का एक ही तरीका है कि पूरे हिन्दुस्तान में एक समान स्कूल व्यवस्था कायम की जाए। जिसका मतलब होगा कि हर स्कूल एक पड़ौसी स्कूल होगा। उस पड़ौस मे जितने भी बच्चे होंगे चाहे किसी भी वर्ग, जाति, मजहब या भाषा के हों वे उस पड़ौसी स्कूल में ही शिक्षा पाएंगे और उसका कोई और विकल्प नहीं होगा। हालांकि कोठारी आयोग की लिखते-लिखते कलम लड़खड़ा गई थी और बहुत सारी बातों में भी अस्पष्टताएं आ गई थीं। लेकिन ये विचार सैद्धान्तिक रूप से आया और पड़ौसी स्कूल की कल्पना पेश की। सन 1968 की जो पहली शिक्षा नीति थी उसमें इस विचार को शामिल किया गया। 1986 की शिक्षा नीति में भारत की संसद ने इसको पारित करके हमारी शिक्षा नीति का अंग बनाया और कहा कि वो सभी कारगर कदम उठाए जाएंगे जिनसे समान स्कूल व्यवस्था हिन्दुस्तान में कायम हो और जब 6 साल बाद भारत की संसद ने संशोधित किया उस नीति को तो एक बार फिर शामिल किया। जिस विचार को दो बार भारत की संसद और उससे पहले 1968 में सैंट्रल केबिनेट जिसे शिक्षा नीति का अंग बना चुकी है उसके ठीक उल्टे हम चलते रहे।

हमारे एक मित्र हैं शिक्षा में काम करते हैं, उन्होंने एक चार्ट बनाया है कि हिन्दुस्तान में कितने प्रकार के स्कूल हैं। यह दो साल पुरानी बात है, उन्होंने पता किया उस समय 400 प्रकार के स्कूल चलते थे। हर मुख्यमंत्री जब चुना जाता है तो उसकी बड़ी इच्छा होती है कि एक नए प्रकार का स्कूल शुरू कर दिया जाए जो उसके नाम से जुड़ जाए और याद किया जाए। दिल्ली के एक मुख्यमंत्री ने सर्वोदय विद्यालय शुरू किए। उस समय के 3000 स्कूलों में से 50 को सर्वोदय विद्यालय बना दिया। एक अगला मुख्यमंत्री आया या आयी, मुझे याद नहीं है, जिसने प्रतिभा विद्यालय शुरू कर दिया। उसने 12 प्रतिभा विद्यालय शुरू करवा दिए। सर्वोदय विद्यालय और प्रतिभा विद्यालय का अर्थ यह होता है कि वहां की स्कूल व्यवस्था में जहां-जहां भी अच्छे शिक्षक हैं उनको वहां से हटाकर इन मुट्ठीभर स्कूलों में शामिल कर लिया जाए या नियुक्त कर दिया जाए। ये तो उस तरह की कहानी हो गई जिसे हम अक्सर उस समय सुनाया करते थे जब हम गांवों में काम करते थे। बैंकों की एक बड़ी अच्छी योजना होती है दूध का उत्पादन बढ़ाने की। मध्यप्रदेश में हमने इसका अध्ययन किया। जब बैंकों को दूध का उत्पादन बढ़ाना होता है, ग्वालियर, मुरैना भैंसों के लिए बहुत मशहूर हैं। ग्वालियर से भैंसें खरीदकर उसको होशंगाबाद में पहुंचा देते और कर्ज में किसानों को दे देते थे। इससे ग्वालियर- मुरैना में दूध का उत्पादन घट जाता और होशंगाबाद का बढ़ जाता। मैंने ये उदाहरण दिल्ली का दिया है। यह आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और बिहार में भी हुआ है। ये जो बैंकों की योजना है दूध का उत्पादन बढ़ाने की उसके ही जैसा है यह। आप यह फैसला नहीं करते कि मेरे राज्य में, मेरे प्रान्त में, मेरे शहर में, मेरे ग्रामीण ब्लॉक में जितने स्कूल हैं उनका कायाकल्प कैसे किया

जाए। ये नहीं होता। पिछले सोलह साल से हम देख रहे हैं कि शिक्षा व्यवस्था के परिवर्तन का फैसला नहीं हो रहा है। योजनाएं चल रही हैं, तरह-तरह की योजनाएं चल रही हैं। अब मिड डे मील चला दिया। मिड डे मील की शुरूआत हुई, कोई बच्चों को मिड डे मील और पोषण दे तो कौन मना कर सकता है। ये तो इंसानियत का सवाल है। लेकिन आप मिड डे मिल क्यों शुरू करते हैं? उस पर 20, 000 करोड रुपया क्यों खर्च करते हैं ? किस कारण से करते हैं ? तो कहा जाता है कि इससे नामांकन बढ़ता है। मिड डे मील 1996 में शुरू हुआ। सन 1996 से लेकर सन 2006 तक हमारे सकल दर्ज अनुपात में कोई तब्दीली नहीं हुई, उल्टा वह गिरा है। मिड डे मील के बावजूद, और गिरता जाएगा क्योंकि यह धारणा कि बच्चे खाना खाने स्कूल आएंगे, हकीकत से परे है। इसका कोई सैद्धान्तिक धरातल नहीं है। बच्चे स्कूल तब आएंगे जब वहां पर ऐसी पढ़ाई-लिखाई होगी जो उनके जीवन के लिए उपयोगी होगी। जहां स्कूल में आकर उनको अच्छा लगेगा, मजा आएगा, ज्ञान प्राप्त करेंगे, ज्ञान का सृजन करेंगे और आगे बढ़कर उनके जीवन में वो ज्ञान किसी न किसी रूप में उपयोगी सिद्ध होगा, व्यवहारिक सिद्ध होगा तब तो बच्चे आएंगे। आपको गलतफहमी है कि वो खाना खाने आएंगे, वे खाना खाने नहीं आते हैं। जितने अध्ययन हो रहे हैं वो सब बता रहे हैं कि अगर 100 बच्चों का खाना भेजा जाता है क्योंकि 100 बच्चों का नामांकन है, तो केवल 30 बच्चे खाना खाते हैं। एक गलत सिद्धान्त पर खड़ी की गई नीति धाराशायी होगी ये उनको समझ लेना चाहिए। मैं कहता हूं कि जिस नीति का सैद्धान्तिक धरातल गलत है वो नीति ठीक हो ही नहीं सकती। जिस नीति को बनाने के पहले आवश्यक शोध नहीं हुए हैं, उसके लिए आवश्यक ज्ञान पैदा नहीं किया गया है, आवश्यक अवधारणाएं विकसित नहीं हुई हैं। जब उसका सिद्धान्त ही गलत है तो उसका प्रतिपादन तो गलत होगा ही। हिन्दुस्तान की तमाम नीतियों के सिद्धान्त गलत हैं। जो यह मानता है कि हम हिन्दुस्तान में बहुपरती शिक्षा योजना चलाएंगे, नाना प्रकार की परतें बिछाएंगे और हिन्दुस्तान में सबको शिक्षा सुलभ हो जाएगी और सब बच्चे पढ़ने लगेंगे, ये बहुपरती शिक्षा का सिद्धान्त कितनी बार ही गलत सिद्ध हुआ है। 60 साल बीत गए। क्या बहुपरती शिक्षा का प्रयोग एक अर्धशताब्दी और करना है? क्योंकि शिक्षा में एक राजनैतिक इच्छा शक्ति का सवाल है जो कभी नहीं भूलना चाहिए। ये शिक्षा में राजनैतिक सवाल है। असल में शिक्षा तो राजनीति का हिस्सा है। जितनी बातें मैं सुना रहा हूं सब राजनीति की हैं, वो शिक्षा की नहीं हैं। मैं आपके सामने एक यह सिद्धान्त रखना चाहता हूं कि, जब तक एक ऐसा समाज होगा जिसके सबसे शक्तिशाली, ताकतवर तबके के बच्चे यानी अभिजात और ऊपरी मध्यम वर्ग और मध्यम वर्ग के बच्चे एक अलग प्रकार की निजी स्कूल व्यवस्था में पढ़ने जाएंगे तो बाकी बची हुई सरकारी व्यवस्था में देश की दो तिहाई जनता पढ़ेगी जो दलित होगी, आदिवासी होगी, उसमें अल्प संख्यक समाज के लोग होंगे, उनमें अधिक लड़कियां होंगी। मेरे पास ये आंकड़ें हैं कि निजी स्कूलों में लड़कियां कम पढ़ाई जाती हैं। लड़के अधिक पढ़ाए जाते हैं। मैं ये आंकड़े लाया हूं। विकलांग बच्चे भी बाहर निकाल दिए जाएंगे।

दिल्ली के सबसे नफीस और निजी विद्यालयों में अभी शोध हुआ है। वो शोध बताता है कि इन सारे नफीस मंहगे निजी स्कूलों में एक व्यवस्था पक्की है कि विकलांग बच्चों को स्कूल में नहीं रखा जाता क्योंकि वहां पर विकलांग बच्चों से जूझने की तैयारी नहीं है। उसके लिए आवश्यक शिक्षाशास्त्र हमारे पास नहीं है, तमाम प्रकार की बातें कही जाएंगी, पर विकलांग को बाहर रखेंगे। अभी एक मित्र ने बहुत अच्छी बात खोज के निकाली। वो एक सैनिक विद्यालय का सर्वे करने गए। वो एक और विद्यालय है। केन्द्रीय विद्यालय हैं, नवोदय विद्यालय हैं और सैनिक विद्यालय भी हैं। सैनिक विद्यालय सरकारी विद्यालय है। वे उसका सर्वे करने गए। पहली बार गये तो बड़े आश्चर्यचकित हुए उसका भव्य कैम्पस देखकर। बहुत बड़ा कैम्पस, बहुत अच्छा भवन, बढ़िया प्रयोगशालाएं, अच्छे शिक्षक, अच्छी पढ़ाई-लिखाई, अच्छा माहौल और आवासीय स्कूल। उन्होंने बताया कि वहां जो बच्चे लेते हैं वे प्रतिस्पर्धा की परीक्षा से निकल कर आते हैं। तब उन्होंने बच्चों की वर्गीय पृष्ठभूमि जानने की कोशिश की। उनको पता चला कि वो सब निचले वर्ग के हैं और सबके सब निचली जातियों के हैं, पिछड़ी जातियों के हैं। उन्होंने मुझे एक ई-मेल भेजा। इसको देखने के बाद उन्होंने कहा कि इस स्कूल को देखने के बाद मैं सोच रहा हूं कि वे क्या कारण हैं कि हिन्दुस्तान का अभिजात वर्ग और मध्यम वर्ग इस प्रतिस्पर्धा परीक्षा में नहीं बैठता क्योंकि यहां तो शिक्षा मुफ्त है और शिक्षा गुणवत्तापूर्ण भी है। इतनी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सैनिक विद्यालय दे रहा है। इतने बढिया परिणाम आ रहे हैं। इसके बाद भी जो ऊपरी वर्ग है, उसके बच्चे प्रतिस्पर्धा में नहीं बैठते हैं। यदि बैठते तो चुने भी जाते क्योंकि उनके पास कोचिंग भी है। उन्होंने स्वयं ही उसका उत्तर दिया कि मुझे लगता है कि और शायद कारण यह है कि ऊपरी मध्यम वर्ग और अभिजात्य तबके ने यह फैसला कर लिया है कि वो दलित, आदिवासियों के साथ अपने बच्चों को नहीं पढ़ाएंगे। मित्रो, ये अचरज की बात नहीं है।

मायरन वीनर एक बहुत मशहूर अमेरिकन प्रोफेसर हैं (उनकी पुस्तक का नाम है 'भारत में बच्चे और राज्य नीति') जो हिन्दुस्तान 80 के दशक में आए। उन्होंने हिन्दुस्तान भर में घूम-घूम कर राजनैतिक नेतृत्व, राजनीतिक पार्टियों के नेताओं, नौकरशाहों, शिक्षाविदों, बाल मजदूरी में काम करने वाले संगठनों, कार्यकर्ताओं और लोगों से कई इन्टरव्यू लिए और इसके बाद उन्होंने कई निष्कर्ष निकाले। उनके एक निष्कर्ष का जिक्र कर रहा हूं। उन्होंने कहा-'मुझे हिन्दुस्तान को देखकर बहुत ताज्जुब है कि यहां पर किसी को इस बात की तकलीफ नहीं है कि हिन्दुस्तान के आधे बच्चे स्कूल के बाहर हैं'। उस समय

भी आधे बच्चे बाहर थे, आज भी आधे बच्चे बाहर हैं। किसी को तकलीफ ही नहीं है। बाल मजदूरों को देखकर तो लोग बोलते हैं कि साहब बेचारे गरीब हैं, गरीबों के बच्चे हैं, अपने मां- बाप के लिए तो उनको कमाना ही चाहिए। इसलिए कोई हर्ज नहीं है कि वे स्कूल में नहीं आएं। ये आवाज मायरन वीनर को सारे देश में सुनने को मिली। आज भी सुनने को मिल जाएगी कि क्या हर्ज है, आखिर उनको कमाना तो है ही अपने मां बाप के लिए। बचपन की ये अवधारणा एक उच्च वर्णीय अवधारणा है। जहां माना गया है, एक ब्राह्मणवादी रचना में कि, मैं ब्राह्मण की बात नहीं कर रहा हूं मैं ब्राह्मणवाद की बात नहीं कर रहा हूं। इन दोनों में बहुत फर्क है क्योंकि इस ब्राह्मणवादी विचारधारा के खिलाफ ब्राह्मण साथी ही खड़े होते हैं। इस लड़ाई का नेतृत्व भी ब्राह्मण साथी ही करते हैं। ब्राह्मणवादी अवधारणा के तहत यह माना गया है कि पिछड़ी जाति के बच्चों को ज्ञान की कोई जरूरत नहीं है, उन्हें ज्ञान का अधिकार ही नहीं है। इसका धरातल भारतीय वर्ण व्यवस्था का आधार है। इसलिए अगर आज लगता है कि हम उस भावना से ग्रसित हैं, हम तैयार नहीं हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था, समाज व्यवस्था में कोई भी ऐसा परिवर्तन किया जाए जिससे उनको ज्ञान मिल जाए और ज्ञान अगर मिलना भी है तो साक्षरता जितना। साक्षरता मिलना एक अलग बात है, लेकिन वे ज्ञान के हकदार हो जाएं और वे भी ऐसे स्कूलों में पढ़कर, जहां कि हमारे बच्चे पढ़ते हैं, ये तो शायद आज भी इस वर्ण व्यवस्था को कतई मंजूर नहीं है। मैं पक्का नहीं हूं, शायद इसका अध्ययन अभी नहीं किया गया है। काफी हद तक यह बताता है कि क्यों चीन में स्कूली शिक्षा 9 वीं कक्षा तक की सन 1960 तक सबको मिल गई ? क्यों दक्षिण कोरिया में मिल गई ? क्यों इंडोनेशिया हमसे आगे चला गया ? क्यों श्री लंका और मालदीव हमसे आगे चले गए ? क्यों बंग्लादेश भी प्राथमिक शिक्षा में हमसे आगे निकल गया? इसका उत्तर शायद हमारी वर्ण व्यवस्था, हमारी ब्राह्मणवादी मानस में है। ये सोचने की जरूरत है। लेकिन निजीकरण का जो सवाल है वह महत्त्वपूर्ण है। मैं इस बात से अपनी बात को समेटूंगा। अगर हमने सिद्धान्त में यह मान लिया कि शिक्षा बाजार में खरीद-फरोख्त की वस्तु है, ये बाजार में एक बिकाऊ चीज है तो आपने सारी लड़ाई उसी दिन हार ली। ये हम मानते हैं। उसके बाद कोई लड़ाई बची ही नहीं है। यदि आपने यह मान लिया कि यह खरीद-फरोख्त की एक वस्तु है तो भारत सरकार इसे विश्व व्यापार संगठन के पटल पर बिकाऊ वस्तु के रूप में रख दे कि अब इसको बाजार की कोई भी ताकत, दुनिया की कोई भी ताकत खरीद सकती है। यह वहीं जा रहा है और कुछ महीनों में ही हो जाता। आज ही इसके बारे में खबर आई है। तैयारी पूरी है और यह बिना संसद की अनुमति के होगा। इस पर कोई लोकतांत्रिक बहस नहीं होने वाली है। पर आप जानते हैं शिक्षा हमारे संविधान में समवर्ती सूची का विषय है यानी राज्य और केन्द्र दोनों का विषय है। इस तरीके से यदि शिक्षा को विश्व व्यापार संगठन में वैश्विक बाजार के लिए खरीद-फरोख्त की वस्तु घोषित करने जा रहे हैं तो एक लोकतंत्र का यह तकाजा होना चाहिए कि विधानसभाओं में और संसद में बकायदा बहस होनी चाहिए और वहां निर्णय होने चाहिएं। अब ऐसी कोई बहस नहीं लग रही क्योंकि हमारी संसद भी अब हाशिए पे पहुंचा दी गई है। अब जो शिक्षा नीति के निर्णय हैं वो संसद और विधानसभाओं में नहीं होते। अब ये निर्णय वाशिंगटन डीसी और विश्व बैंक के मुख्यालय में हो रहे हैं, वहां से प्रायोजित किए जा रहे हैं। संदेश वहां से आ रहे हैं और कानून यहां बनाया जाता है। इस हालात में हिन्दुस्तान आज पहुंच चुका है। इसलिए मैंने संप्रभुता का सवाल शिक्षा के समानता के समक्ष उठाया।

अगर आप समानता की बात कर रहे हैं तो यह जाहिर है कि वे सारे मुल्क जो विकसित मुल्कों के रूप में खडे हुए हैं वे विकसित मुल्कों की कतार में हैं, जी-8 के देश। अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड, कनाडा, जापान, इस तरह के जो मुल्क हैं। इन सारे मुल्कों की दो खास बातों का जिक्र मैं करूंगा। एक तो इन सारे मुल्कों में ऐसी स्कूल व्यवस्था चलती है जो पूरी तरह से सरकार द्वारा समर्थित होती है, विकेन्द्रित होती है। कहीं कोई ये नहीं कहता कि सरकार अगर पैसा दे तो नियंत्रण भी करे। सरकार का पैसा और प्रबंधन का सिद्धान्त अलग-अलग बातें हैं। इसमें हमें बहुत भ्रम नहीं रहना चाहिए। हमारे यहां भी तिहत्तर वां और चौहत्तर वां संविधान संशोधन विकेन्द्रित व्यवस्था की पूरी बुनियाद पंचायतों, नगर निगमों और नगर पालिकाओं में खड़ी कर चुका है। इन जी-8 मुल्कों में सरकार के पैसों से चलने वाली सुचारू व्यवस्थित स्कूल प्रणाली चलाती है। इसलिए वे आज वहां पहुंच पाए हैं जहां वे खड़े हैं और दुनिया की बड़ी ताकत हैं और खूब सम्पदा के मालिक हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि ऐसे मुल्क जहां पर स्कूली व्यवस्था और मैं तो कहूंगा कि उच्च शिक्षा में निजीकरण होता है यह पिछड़े मुल्कों की पहचान है। यह अग्रणी मुल्कों की पहचान नहीं है, पिछड़ेपन की पहचान है। यह पहचान एक ऐसे राज्य, एक ऐसे राजनीति शास्त्र के राज्य की है जो अपनी संवैधानिक जवाबदेही से मुक्त होने के लिए उससे पल्ला झाडने की कोशिश कर रहा है। आज ये हालत हिन्दुस्तान की है। हिन्दुस्तान एक पिछड़े हुए के रूप में बना रहेगा इसकी पूरी धरातल निजीकरण में बनाई जा रही है। जहां चन्द एक वर्गों को तो अच्छी शिक्षा मिलेगी। वे ज्ञान सृजन में सक्रिय भागीदारी करेंगे और वह ज्ञान दुनिया के वैश्विक बाजार के मापदण्ड़ों के अनुसार होगा, जो इनफॉर्मेशन टेक्नोलॉजी के नाम पर बिकेगा। जो सैंसेक्स के अंकों को बढ़ाएगा। एक तरफ सैंसक्स के अंक बढ़ेंगे और दूसरी तरफ विदर्भ के किसान, आंध्र प्रदेश के किसान आत्महत्याएं करेंगे। वो 10 प्रतिशत मृत्यु दर भी बना देगा। वो सैंसक्स को 13000 के अंकों के ऊपर भी ले जाएगा। लेकिन हिन्दुस्तान में गरीबी बेखौफ बढ़ती जाएगी। ऐसी ज्ञान व्यवस्था को पैदा करने वाले लोग ऊपर के तबके से बनेंगे और हिन्दुस्तान उसके लिए

जमीन भी देगा। वो हिन्दुस्तान की सेवा नहीं करेंगे वे वैश्विक बाजार की सेवा करेंगे।

सवाल ज्ञान अर्थव्यवस्था बनाने का नहीं है। प्रश्न है कि ज्ञान अर्थव्यवस्था कैसी होगी ? किसके पक्ष में होगी ? किसके समर्थन में खड़ी होगी ? किसका हित करेगी ? सवाल यह नहीं है कि हिन्दुस्तान को ज्ञान अर्थव्यवस्था आधारित बनाना है या नहीं बनाना है। सवाल यह है कि कैसी ज्ञान अर्थव्यवस्था बनानी है ? यह आप जानते ही हैं कि पाषाण युग से लेकर आज तक कभी भी कोई अर्थव्यवस्था या समाज व्यवस्था ऐसी नहीं बनी जिसका आधार ज्ञान न हो। ज्ञान अर्थव्यवस्था कोई इनफॉरमेशन की देन नहीं है। हर युग में ज्ञान आधार रहा है। फिर भी यह भ्रम पैदा किया जाता है कि ज्ञान अर्थव्यवस्था 1991 में हिन्दुस्तान में पैदा हुई और वैश्वीकरण के साथ जुड़ी भी। दुनिया के मानव ने जब पहला पहिया बनाया तो बड़ा भारी ज्योमेट्री का सिद्धान्त और भौतिक शास्त्र का सिद्धान्त स्थापित किया। वो नहीं होता तो हम यहां नहीं होते। तो हम यह कहना तो छोड़ दें कि हम कोई ज्ञान अर्थव्यवस्था खड़ी कर रहे हैं। सवाल यह है कि हम कैसी ज्ञान अर्थव्यवस्था खड़ी करने जा रहे हैं ? ये प्रश्न जुड़ा हुआ है कि हम किसके हित में ज्ञान अर्थव्यवस्था खड़ी करेंगे ? क्या हम हिन्दुस्तान में एक ऐसी ज्ञान अर्थव्यवस्था खड़ी करेंगे जो हिन्दुस्तान में ऐसे नागरिकों का निर्माण करेगा जो उस ज्ञान की बदौलत दुनिया में राज्य करना चाहेंगे? दुनिया की दौलत पर अपना नियंत्रण साबित करना चाहेंगे ? दुनिया के प्राकृतिक संसाधनों का बुरी तरह से दोहन करना चाहेंगे, जैसा दोहन प्राकृतिक संसाधनों का आज अमेरिका करता है और उसी तरह संसाधनों को जल्द से जल्द नष्ट करना चाहेंगे ? क्या ऐसी ज्ञान अर्थव्यवस्था खड़ा करना हिन्दुस्तान की शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए ? यदि ऐसा उद्देश्य होगा, जो आज दिख रहा है, बन रहा है, वो ज्ञान हिंसक होगा। ज्ञान जन विरोधी होगा, ज्ञान लोकतंत्र विरोधी होगा। ज्ञान लोगों के बीच केवल टुकड़े-टुकड़े करेगा और समाज को बांटेगा। तो फिर क्या हम ऐसी ज्ञान व्यवस्था की कल्पना कर सकते हैं, इतनी हम हिम्मत कर सकते हैं आज, इसके बावजूद कि हवा उल्टी दिशा में बह रही है कि हम ऐसी ज्ञान अर्थव्यवस्था खड़ी करें कि जिसमें से निकलने वाला हर विद्यार्थी अपने व्यक्तिगत हित में नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक हित में, और केवल हिन्दुस्तान के हित में नहीं बल्कि पूरे विश्व के लिए काम करे और विश्व शांति को स्थापित करेगा। अगर ज्ञान की यह परिभाषा हम लेते हैं तो हमारे स्कूल और विश्वविद्यालयों का और व्यावसायिक शिक्षा का सारा चरित्र बदल जाता है। तब ज्ञान विश्व बाजार में मुनाफा कमाने का जरिया नहीं बनता, तब ज्ञान दुनिया में कल्याण लाने का जरिया बनता है। ये एक दूसरे के ठीक विपरीत धारणाएं हैं। हमको तय करना है कि हम कैसी ज्ञान अर्थ व्यवस्था में हिन्दुस्तान को ले जाना चाहते हैं। ये बहस तो अभी शुरू भी नहीं हुई है। हम तो पागलों के तरीके से इस समय बढ़ रहे हैं यह मानकर कि जिधर हिन्दुस्तान दस प्रतिशत और सेंसक्स के 13000 के सूचकांक से आगे ले जाएगा, हिन्दुस्तान की वो सही दिशा है। हम भी एक दिन इराक पर हमला करके गर्व से बैठ जाएंगे। मेरी दृष्टि में ये प्रमुख और बड़े सवाल हैं। इसलिए मित्रो, शिक्षा का सवाल समानता से जुड़ा है और यदि समानता नहीं होगी तो हिन्दुस्तान में सांप्रदायिकता आएगी जो आ रही है। ये सारे राज्य जहां पर जितनी ज्यादा विषमता है वहां पर उतनी ज्यादा सांप्रदायिकता है। आप इसको तौलकर देख लीजिए। विषमता और सांप्रदायिकता में रिश्ता है। एक विद्वान हैं, एजाज अहमद, उन्होंने बहुत अच्छा विश्लेषण भूमंडलीकरण और सांप्रदायिकरण के सांस्कृतिक रिश्तों का किया है। उन्होंने बताया कि किस तरह से भूमंडलीकरण सांप्रदायिकरण की बुनियाद रखता है और भूमंडलीकरण तब ही पनप सकता है जब समाज की आंदोलित करने वाली ताकत को आप मजहब और जाति के आधार पर बांटते हैं, उसके टुकड़े-टुकडे करते हैं। तभी तो वो आंदोलन पनपेगा, नहीं तो जनता एक हो जाएगी। ये तो पुरानी बात है औपनिवेशिक काल से 1857 से ब्रिट्रिश सत्ता ने हमकों सिखाई है कि कभी हिन्दुस्तान की जनता को एक मत होने दो और आज का साम्राज्यवाद भी यही हमकों सिखा रहा है। आपको एक नहीं होने दिया। और सांप्रदायिकरण इसका बहुत प्रमुख औजार है।

आज गुजरात में भी यह बात देखने में आ रही है। वहां के आदिवासी, वहां के किसान जब-जब आंदोलन खड़ा करते हैं तो सांप्रदायिकरण के हमले के शिकार होते हैं। ये सारी बात शिक्षा के सवालों के अन्तर्गत आती है। इसलिए मित्रो, शिक्षा में समानता की लड़ाई और शिक्षा के निजीकरण के खिलाफ आज लामबंद हुई जनता आप से मांग कर रही है कि आप उसका साथ दें। नहीं तो वो शिक्षा जो आज आपके बच्चों को मिल पा रही है निजी स्कूलों में वो इतनी महंगी हो जाएगी कि वो आपकी हैसियत से बाहर हो जाएगी। आज ही एक मित्र यहां जयपुर के बारे में बता रहे थे कि वे किसी स्कूल में अपने छोटे से पांच साल के बच्चे को भेजते हैं और उनके यहां स्कूल से एक चिट्‌ठी आ गई कि हमारे यहां चार-पांच दिन बाद स्पोर्ट्स डे होने वाला है। उसके लिए 200 रुपये चाहिएं। उसके बाद फैन्सी ड्रेस होगा फिर 200 रुपये मांगे जाएंगे। क्योंकि शिक्षा मुनाफा का जरिया घोषित की जा चुकी है। इस सिद्धान्त को बदलना पड़ेगा, शिक्षा मुनाफा का जरिया नहीं है। वो देश के निर्माण का और दुनिया के निर्माण का, पुनः निर्माण का जरिया है और इस सिद्धान्त के साथ हम यह उम्मीद करते हैं कि जनता जो लड़ाई लड़ रही है, हिन्दुस्तान के अलग-अलग हिस्सों में वो लड़ाई चल रही है। हम जैसे बुद्धिजीवी लोग, हमारे जैसे विश्वविद्यालयों और स्कूल में पढ़ाने वाले शिक्षक लोग, शोधकर्ता लोग, हम लड़ाई में उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े होंगे और हिन्दुस्तान को नष्ट होने से बचा लेंगे। धन्यवाद। ◆